कक्षा में बन्धुत्व का निर्माण

अमन मदान

इस विचारपरक लेख में, लेखक समानुभूति और भिन्नता को स्वीकार करने के महत्त्व पर प्रकाश डाल रहे हैं जो वयस्कता की तरफ़ बढ़ने और दुनिया में अपनी जगह लेने का हिस्सा हैं। पारम्परिक पक्षपात और पूर्वाग्रहों का होना बहुत सामान्य है जो बच्चे के भावनात्मक विकास को सीमित कर सकते हैं। शिक्षकों और वयस्कों को इस परिपाटी को तोड़ना होगा ताकि बच्चे मुक्त होकर ज़्यादा समावेशी जीवन जी सकें।

मेरे विश्वविद्यालय में कई अलग-अलग समुदाय, वर्ग और जेंडर के विद्यार्थी आते हैं। जब अपनी पढ़ाई पूरी होने के बाद वे लौट रहे होते हैं, तो मैं अक्सर उन्हें अद्भुत बातें कहते सुनता हूँ, जैसे, "मैं 'उस' समुदाय के लोगों से दूर रहता था। लेकिन यहाँ आकर मुझे एहसास हुआ कि वे अच्छे लोग हैं। मैंने उनसे दोस्ती भी की।" मैं उन्हें यह कहते हुए भी सुनता हूँ, "मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं किसी पुरुष/ महिला के साथ सिर्फ़ दोस्त रह सकूँगी/ सकूँगा, पर अब ऐसा होता है।" कभी-कभी, वे यह भी कहते हैं कि उन्होंने ऐसे लोगों से दोस्ती की जो नॉन-बाइनरी जेंडर के हैं।

ऐसा सिर्फ़ मेरे विश्वविद्यालय में ही नहीं हो रहा है बल्कि यह देश भर के स्कूलों और कैम्पसों में हो रहा है। हालाँकि बन्धुत्व की भावना पैदा करने में निश्चित रूप से कई अड़चनें भी हैं। इसे कोई व्यक्ति किस तरह समझता है? लोग अपने डर और नफ़रत पर क़ाबू पाना कब शुरू करते हैं? हम किस तरह इसमें मदद कर सकते हैं और इस प्रक्रिया की रफ़्तार को कैसे बढ़ा सकते हैं?

डर और नफ़रत की कई वजहें हो सकती हैं। कभी-कभी एक समूह द्वारा दूसरे समूह के उत्पीड़न का काफ़ी लम्बा इतिहास होता है। किसी समय मैं एक मोबाइल लाइब्रेरी चलाया करता था जिसे मैं सप्ताह में एक बार एक गाँव के बाहरी इलाक़े में ले जाता था और बहुत ख़ुश था कि कई दलित बच्चे इसमें आ रहे थे। मैंने गाँव के बीचोंबीच बरगद का एक सुन्दर पेड़ देखा और बच्चों को सुझाव दिया कि हम पुस्तकालय को वहाँ स्थानान्तरित कर दें। मैंने उन्हें तर्क दिया कि इस तरह पुस्तकालय में ज़्यादा लोग आ सकेंगे। लेकिन उनके हाव-भाव बदल गए और उन्होंने ज़ोर दिया कि मैं वहाँ न जाऊँ। बरगद का पेड़ ठीक उसी जगह पर था जहाँ दबंग जाति के लोग रहते थे और इन बच्चों को यक़ीन था कि रास्ते में उन्हें तंग किया जाएगा और सताया जाएगा। इसकी बजाय वे वहाँ से दूर रहना ही पसन्द करेंगे।

संसाधनों, प्रभुत्व और सम्मान को लेकर समूहों के बीच होने वाले संघर्ष इस तरह के भय, द्वेष, नापसन्दगी और नफ़रत के कारण हो सकते हैं। कई अलग-अलग इतिहास और सामाजिक परिस्थितियाँ सामाजिक समूहों और जेंडरों के बीच तनाव पैदा कर सकती हैं। अक्सर इसे संगठन व नेता और ज़्यादा हवा देते हैं जिनकी सोच यह होती है कि शत्रुता और भय बढ़ने के साथ उनका रुतबा भी बढ़ जाएगा। संसाधनों के ज़्यादा निष्पक्ष बँटवारे के साथ एक ज़्यादा न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था बनाना अन्तिम हल हो सकता है। इसके साथ, स्कूल और युवा संगठन स्नेह, सम्मान और संवाद की संस्कृति बनाने में और साथ ही इनसे आने वाली समानता की भावना पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सहयोग के लिए स्थितियाँ बनाना

जब समूह एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं तो डर और अविश्वास सामान्यतः बढ़ने लगता है। हालाँकि, शोध से पता चलता है कि जब अलग-अलग समूह और जेंडर के सदस्य एक साझा लक्ष्य के लिए सहयोग करने के मक़सद से साथ आते हैं, तो वे एक-दूसरे पर भरोसा करना शुरू कर देते हैं और उनका डर कुछ कम हो जाता है। मिसाल के तौर पर, कनाडा के एक अर्थशास्त्री मैट लो ने उत्तर प्रदेश में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने अलग-अलग जातियों के युवाओं को एक साथ क्रिकेट खेलने के लिए इकट्ठा किया। उन्होंने कुछ टीमें इस तरह बनाईं जिनमें अलग-अलग जातियों के लोग थे और कुछ टीमों में एक ही जाति के खिलाड़ी रखे। उन्होंने देखा कि मिली-जुली टीमों में होने पर अलग-अलग जातियों के खिलाड़ी आपस में ज़्यादा विश्वास रखने लगे और एक-दूसरे को पसन्द करने लगे। कई और अध्ययन भी इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। जब अलग-अलग समुदाय प्रतिस्पर्धी के रूप में सम्पर्क में आते हैं तो उनके सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं। हालाँकि, जब वे सहयोगी के रूप में सम्पर्क में आते हैं या जब वे एक साझा लक्ष्य के लिए एक-दूसरे के सहयोग से काम कर रहे होते हैं तो एक-दूसरे के लिए उनका स्नेह और सम्मान बढ़ने लगता है। अमरीकी मनोवैज्ञानिक, गॉर्डन ऑलपोर्ट, 1954 में इस पर ध्यान दिलाने

वाले शुरुआती विद्वानों में से एक थे। उन्होंने बताया कि यह अपने आप नहीं होता है। इसमें अधिकारियों के सहयोग की ज़रूरत होती है वरना चीज़ें बिगड़ सकती हैं। इसमें और मदद मिलती है जब अलग-अलग समुदाय बराबरी की हैसियत से एक साथ आते हैं और दर्जे या प्रभुत्व में बहुत अलग नहीं होते।

समुदाय में बड़े पैमाने पर यह सब करना मुश्किल है। मिसाल के तौर पर, अलग-अलग इलाक़ों में रहने वाले लोगों को एक साथ कैसे लाया जा सकता है? जब वे एक ऐसे सामाजिक ढाँचे का हिस्सा हैं जिसमें एक को दूसरे के सेवक के रूप में काम करना पड़ता है, तो उन्हें बराबर रखकर एक साथ कैसे लाया जा सकता है? या जब लम्बे समय से यह माना जाता रहा है कि महिलाएँ समझ और मिज़ाज में पुरुषों से कमतर हैं?

जब अलग-अलग समूह और जेंडर के बच्चे जीने, सीखने और खेलने के लिए स्कूलों में इकट्ठे होते हैं तो कई सम्भावनाएँ खुल जाती हैं। कई शिक्षकों ने ऐसे खेल आज़माए हैं जिनमें बच्चों को एक-दूसरे का सहयोग करना होता है। उदाहरण के लिए, वे एक जैसी क्षमताओं वाली लड़कियों और लड़कों की टीम बना सकते हैं (अलग-अलग स्तर के कौशलों को मिलाने से उलटा असर हो सकता है!) और उनके बीच कड़वाहट कम हो जाएगी। कई शिक्षकों ने 'सहयोगी ढंग से सीखने' को भी आज़माया है जहाँ बच्चे एक साझा उद्देश्य के साथ छोटे समूहों में काम करते हैं। एक जैसी क्षमताओं वाले बच्चों को बग़ीचे में पौधों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने या किसी पोस्टर के अलग-अलग हिस्सों को साथ मिलकर बनाने जैसी गतिविधियों में सहयोग करना होता है। ऐसे में वे अक्सर दोस्त बन जाते हैं और एक-दूसरे के प्रति सम्मान महसूस करने लगते हैं। इन सभी रणनीतियों ने यह दिखाया है कि इनके द्वारा अलग-अलग पहचान वाले बच्चों के बीच स्नेह और विश्वास बढ़ने लगता है।

दुनिया को वर्गीकृत करने के ढंग को बदलना

जब लोग प्रतिस्पर्धा करने की बजाय सहयोग करने के लिए एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो दुनिया को लेकर उनका वर्गीकरण बदलने लगता है। हमने अपने लिए आदतन कुछ श्रेणियाँ बना रखी हैं और हम आमतौर पर अपनी दुनिया में उन्हीं के आधार पर काम करते हैं। एक बच्चा सोचने लगता है, "यह लाल है और फड़फड़ा रही है, इसलिए यह गर्म होगी और मुझे जला देगी। मैं इससे दूर रहूँगा।" कुछ समय बाद, यह एक स्वीकृत तथ्य बन जाता है : जो कोई भी चीज़ आग की तरह दिखती है उससे, बिना कुछ और सोचे, दूर ही रहना चाहिए। हमारे वर्गीकरण हमारी भावनाओं और दृष्टिकोणों से जुड़े होते हैं। आग को देखकर भयाकुल सम्मोहन और डर की अनुभूति हो सकती है और बच्चा इससे दूर रहना चाहता है। लोगों के साथ भी ऐसा ही होता है — हम हर दिन समाचारों में चौकड़ी वाले स्कार्फ़ पहने दाढ़ी वाले आदमियों को बन्दूकें उठाए देखते हैं और सोचने लगते हैं कि जो कोई भी ऐसा दिखता है वह ख़तरनाक है और उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए। इस तरह ऐसे दिखने वाले लोगों के प्रति नफ़रत और सन्देह पैदा हो जाता है और हम उनसे दूर ही रहना चाहते हैं।

एक और उदाहरण लेते हैं। यूके और यूएसए के श्वेत स्कूलों में बच्चों को अश्वेत और श्वेत लोगों की तस्वीरें दिखाई गईं और पूछा गया कि उन्हें कौन पसन्द है, वे किसे अच्छा मानते हैं और किसके साथ दोस्ती करना चाहते हैं। ज़्यादातर श्वेत बच्चों ने श्वेत लोगों की ही तस्वीरें उठाईं। हालाँकि, जब यही प्रयोग उन स्कूलों में किया गया जहाँ अलग-अलग रंगों वाली त्वचाओं के बच्चे पढ़ते थे, तो श्वेत बच्चों ने कई अलग-अलग, ग़ैर-श्वेत लोगों की तस्वीरें उठाईं जिन्हें वे पसन्द करते थे और जिनसे दोस्ती करना चाहते थे। यहाँ उन्होंने श्वेत लोगों के लिए कोई ख़ास पसन्द नहीं दिखाई।

इन बच्चों के मामले में, यह अलग-अलग जातियों के लोगों के साथ सम्पर्क ही था जिसने उनके प्रति इन बच्चों के विचारों को बदल दिया। लोगों द्वारा बनाए गए वर्गीकरण और उनके नज़रियों को बदलने के और भी कई तरीक़े हैं। अन्य समुदायों के साथ सम्पर्क तब मुश्किल हो सकता है जब आपकी कक्षा में उनके ज़्यादा सदस्य न हों। भारत की शिक्षा प्रणाली उत्तरोत्तर खण्डित होती जा रही है जहाँ सरकारी स्कूलों में केवल एक ख़ास क्षेत्र के ग़रीब बच्चे पढ़ते हैं जबकि बाक़ी ग़रीबों से लेकर बहुत अमीर बच्चे फ़ीस लेने वाले निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। अलग-अलग इलाक़ों या गाँवों में अलग-अलग समुदायों का रहना भी एक आवासीय विभाजन है। फिर भी बहुत-सी चीज़ें हैं जो युवाओं द्वारा दुनिया को वर्गीकृत करने के ढंग को बदलने के लिए की जा सकती हैं।

कुछ पद्धतियाँ

एक बड़े पैमाने पर इस्तेमाल की जाने वाली रणनीति है — नियमित रूप से ऐसे वीडियो दिखाना और कहानियाँ पढ़ना, जो दूसरे समुदायों और जेंडरों के सदस्यों को सकारात्मक ढंग से सामने लाती हैं। मिसाल के तौर पर, इंग्लैंड में एक अध्ययन किया गया था जिसमें प्राथमिक स्कूल के बच्चे कहानी की ऐसी क़िताबें पढ़ते हैं जहाँ मुख्य पात्र एक शरणार्थी था। यह देखा गया कि इन बच्चों ने उन लोगों को पसन्द करने में साफ़तौर पर बढ़ोतरी दिखाई जो उनके देश में हाल ही में अप्रवासियों के रूप में आए थे। भारत में मेरे शोध सहयोगी ध्रुव देसाई कम फ़ीस लेने वाले एक निजी स्कूल में बच्चों की कहानियाँ पढ़ते हैं जहाँ कोई मुसलमान नहीं है और सिर्फ़ कुछ

दलित हैं। वे सोच-समझकर ऐसी कहानी की क़िताबें चुनते हैं जिनमें मुख्य पात्र एक लड़की होती है जो रूढ़िवादिता को तोड़ने की कोशिश कर रही है या जो उस दर्द को बयाँ करती हैं जो जातिवाद बच्चों और वयस्कों के लिए पैदा कर सकता है।

दुनिया को लेकर बच्चों के संज्ञानात्मक और भावात्मक वर्गीकरण को बदलने के लिए किस तरीक़े का उपयोग करना है, यह अन्य चीज़ों के अलावा उनकी उम्र पर भी निर्भर करता है। कई शोधकर्ताओं का कहना है कि बच्चों में किन्हीं समुदायों और जेंडरों को लेकर पाँच साल की छोटी उम्र से ही पूर्वाग्रह विकसित हो सकते हैं! उस उम्र में, वे बहुत ज़्यादा सामान्यीकरण करते हैं और उनके लिए यह देखना मुश्किल होता है कि हर कोई एक जैसा नहीं है। उन्हें यह समझने में मुश्किल होती है कि जिन समुदायों के प्रति उन्होंने नकारात्मक धारणाएँ बना रखी हैं, उनमें अच्छे लोग भी हो सकते हैं। 8-10 साल से ज़्यादा उम्र के बच्चों को यह बात समझने में आसानी होती है।

कहानियों की प्रकृति से भी फ़र्क़ पड़ता है। सिर्फ़ कई तरह की पहचानों वाली कहानियों के होने से बहुत ज़्यादा अन्तर नहीं आ सकता। उदाहरण के लिए, अगर कुछ उत्तर भारतीय बच्चे दक्षिण भारतीयों को नापसन्द करते हैं और उनका मज़ाक उड़ाते हैं, तो ज़रूरी नहीं कि सुब्रमण्यम नाम के क़िरदार को लेकर बनाई गई कोई मज़ेदार और साहस से भरी कहानी उनके पूर्वाग्रह को बदलने के लिए काफ़ी हो। वे इस सुब्रमण्यम को पसन्द कर सकते हैं लेकिन फिर भी बाक़ी दक्षिण भारतीयों को लेकर अपनी धारणाएँ और नज़रिए वैसे के वैसे ही बनाए रखते हैं। जब सुब्रमण्यम की दक्षिण भारतीय पहचान पर बार-बार ज़ोर दिया जाता है और उसका चित्रण इस प्रकार किया जाता कि उसके भीतर दक्षिण भारतीयों के अच्छे गुण हैं तो इससे ज़्यादा फ़र्क़ पड़ता दिखाई देता है। बहुत छोटे बच्चे उनके पूर्वाग्रह के ख़िलाफ़ जाने वाले इस उदाहरण को अनदेखा कर सकते हैं और अपनी धारणाओं पर अडिग रहते हैं। लेकिन बड़े बच्चों के साथ इस चीज़ की सम्भावना ज़्यादा होती है कि वे कहानी का मज़ा लेने के बाद चीज़ों को अलग ढंग से देखने की कोशिश करेंगे। विरोधाभासी रूप से, पहचान पर ज़ोर देने से लोगों द्वारा किए गए वर्गीकरणों को बदलने में मदद मिलती है। यह उन भावनाओं और नज़रियों को बदलने में भी मदद करता है जो वे कई अलग-अलग सामाजिक समूहों के प्रति रखते हैं।

पूर्वाग्रहों को दूर करने के लिए विषयों का इस्तेमाल

बन्धुत्व के निर्माण के कई सिद्धान्तों को साधारण स्कूली कक्षाओं में आसानी से शामिल किया जा सकता है। भाषा की कक्षाओं में ऐसी कहानियों और नाटकों को चुनना सम्भव है जो हमारी रूढ़िबद्ध धारणाओं को बदल दें और उन्हें तोड़ दें। कक्षा में उन पर की जाने वाली चर्चाएँ बच्चों की भावनाओं और नज़रियों को बदलने में मदद करती हैं। शिक्षक सहयोगपूर्ण शिक्षा को अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों में भी शामिल कर सकते हैं। ऐसा देखा गया है कि इससे न केवल बन्धुत्व को बढ़ावा मिलता है बल्कि विद्यार्थियों के सीखने के स्तर और उस विषय के आनन्द को भी बढ़ाता है जिसका वे अध्ययन कर रहे होते हैं। खेलों को ऐसे तरीक़ों से खेला जा सकता है जो सामाजिक समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा की बजाय सहयोग को बढ़ावा दें।

कई शिक्षाविदों का मानना है कि हमारा स्कूली पाठ्यक्रम भी उस नफ़रत और डर को रोकने के लिए ज़्यादा पैने ढंग से ध्यान दे सकता है जिसे हम आज दुनिया में देख रहे हैं। उदाहरण के लिए, अलग-अलग सामाजिक समूहों को दर्शाने के तरीक़े पर ज़्यादा ध्यान दिया जाए तो इससे मदद मिल सकती है। मनुष्यों का अकादमिक अध्ययन इसमें एक अहम भूमिका निभाता है और हम दुनिया को कैसे वर्गीकृत करते हैं, इसे बदलने में बहुत मदद कर सकता है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में काफ़ी मेहनत की गई है जिसने हमें यह समझने में मदद की है कि पूर्वाग्रह ग़लत हैं और सच्चाई से दूर हैं। मिसाल के तौर पर, इस इतिहास को पढ़ाना कि जातियों का उदय कैसे हुआ और किस तरह वे अपने वर्तमान स्वरूप में आईं, लोगों के कई पूर्वाग्रहों को हिला सकता है। इससे पता चलेगा कि असल में लोग अपने भाग्य के उत्थान और पतन के अनुसार अलग-अलग वर्णों के बीच आते-जाते रहे हैं। जातियाँ बन्द डिब्बों की तरह नहीं हैं, जैसा कि अपनी जाति के वर्चस्व को बनाए रखने की मंशा रखने वाले लोग चाहते हैं कि हम विश्वास करें। नफ़रत फैलाने वाले नेता जितना सोचते हैं, हममें उससे कहीं ज़्यादा चीज़ें समान हैं। जीवविज्ञान आसानी से दिखा सकता है कि वास्तव में सभी जातियों, बल्कि दुनिया के सभी लोगों के बीच आनुवंशिक सामग्री में दरअसल बहुत हद तक समानता है। अकादमिक शोध हमें यह समझने में मदद करता है कि पुरुषों और महिलाओं के बीच फ़र्क़ की बुनियाद जीवविज्ञान से ज़्यादा सामाजिक परिस्थितियों और संस्कृति में निहित है। गम्भीर अकादमिक अध्ययन से यह भी पता चलता है कि धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसक वारदातें आमतौर पर सत्ता या बदला लेने की इच्छा का नतीजा होती हैं और केवल धार्मिक विश्वासों के चलते नहीं की जातीं। स्कूली पाठ्यक्रमों में इन मुद्दों पर ज़्यादा ज़ोर देकर उन वर्गीकरणों को रोकने में मदद मिल सकती है जो लोगों को बाँटते हैं और उन्हें अलग रखते हैं।

अपने देश और दुनिया में बन्धुत्व को कैसे बढ़ावा दिया जाए, इसके बारे में हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। जब मैं देखता हूँ कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में क्या हो रहा है जहाँ विविध

और एक-दूसरे से जुदा पृष्ठभूमियों के लोग इकट्ठा होते हैं और दोस्त बन जाते हैं, तो मुझे बहुत उम्मीद मिलती है। शैक्षिक संस्थान और युवा संगठन सामाजिक समूहों के बीच विश्वास, मित्रता और समानता को बनाने में बड़ा योगदान दे सकते हैं। इसके लिए वे अपने ख़ुद के अनुभवों और मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान आदि विषयों में हुए शोध से काफ़ी कुछ सीख सकते हैं।

घृणा, तिरस्कार और डर अपरिहार्य नहीं हैं। हम बेशक उन पर क़ाबू पाने के तरीक़े सीख सकते हैं। ज़रूरी है कि यह काम किंडरगार्टन की कक्षाओं से ही शुरू कर दिया जाए।

अमन मदान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल में पढ़ाते हैं और संवाद, बन्धुत्व और न्याय के लिए बने एक हित समूह का संचालन करते हैं। उनसे *amman.madan@apu.edu.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमेय कान्त **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय